4 गणित सीखने में संस्कृति का योगदान

के. सुब्रमण्यम

हाल ही में अहमदाबाद में हुई एक कार्यशाला में हमने प्राथमिक स्कूल शिक्षकों से यह बताने को कहा कि उनके विद्यार्थी स्कूल के बाहर क्या करते हैं, और क्या उसमें किसी प्रकार का गणित भी कहीं शामिल रहता है। शिक्षकों ने बहुत सारी बातें बताईं। उनके विद्यार्थी, जो गरीब शहरी परिवारों से आते हैं, अपने माता–पिता के व्यवसाय में मदद करते हैं। वे सब्जी बेचते हैं, पतंगें, बिन्दी के पैकेट, अगरबत्तियाँ और अन्य कई चीजें भी बनाते और बेचते हैं। वे अलग–अलग इकाइयों में सब्जियों के दाम जानते हैं, और यह भी कि एक 'कोड़ी' (20 दर्शाने वाली इकाई) पतंगें बेचने पर उन्हें कितना मुनाफा होगा। पतंगें, कागज़ और डण्डियों से बनती हैं। कागज़ पैकेटों में बिकता है, और डण्डियाँ बण्डलों में उनकी दरें अलग–अलग इकाइयों में होती हैं। स्वाभाविक रूप से, ये फैसले करते समय कि कितना कच्चा माल खरीदना, कितना सामान बनाना और बेचना, इस सबमें कितना समय लगाना आदि समस्याएँ खड़ी होती हैं। इन समस्याओं से पार पाने के लिए बच्चे अपने बड़े भाई–बहनों के साथ या बड़ों के साथ अपने ही तरीके निकालते रहते हैं। और, ऐसा करने में पूरे समय वे संख्याओं और गणित का उपयोग कर रहे होते हैं।

> *शायद ही किसी स्कूल के पाठ्यक्रम में दैनिक जीवन के गणित के लिए कोई स्थान हो। बच्चों की गणित विषय में रूचि को बढ़ाने में कुछ परिपेक्ष्यों को शामिल करना बेहतर विकल्प हो सकता है ताकि बच्चों द्वारा गणित सीखने की प्रक्रिया स्कूल के अन्दर तथा बाहर निर्बाध रूप से चलती रहे।*

ये बातें हमें बच्चे नहीं बल्कि उनके शिक्षक बता रहे थे। हमने उनसे पूछा कि उन्हें यह कैसे पता चला कि बच्चे इतना सब जानते हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि जब बच्चे स्कूल से अनुपस्थित रहते हैं तब वे इसका कारण जानने के लिए उनके घर जाते हैं। वे माता–पिता से बात करते हैं और पता चलता है कि बच्चा उनकी मदद कर रहा है – शायद फेरी लगाकर सब्जी बेचने में या जब माँ किसी काम से गई हो। हमें इस बात की खुशी थी कि बच्चों की उपस्थिति पक्की करने के लिए शिक्षक इतना कष्ट उठाते हैं। परन्तु इस जवाब को लेकर हमें थोड़ी शंका भी थी। जब हमने बच्चों के लिए तैयार की गई वर्कशीट्स (इन स्कूलों में नियमित पाठ्यपुस्तकों की बजाय अपनी खुद की वर्कशीट्स का उपयोग किया जाता है) को खोला तो उनमें, हमने बच्चों की जिन्दगी के बारे में जो कुछ सुना था, उसका कोई संकेत नहीं मिला। हम समझ गए कि शिक्षकों को बच्चों की स्कूल के बाहर की गतिविधियों का पता स्कूल के बाहर ही चला, गणित की कक्षा में नहीं।

शिक्षकों से कुछ चर्चा के बाद हमें महसूस हुआ कि 'उचित' गणित क्या है, इस बारे में उनकी काफी मजबूत धारणाएँ थीं। एक डच अध्ययन में इस्तेमाल किया गया यह प्रश्न कि 'यदि एक ध्रुवीय भालू का वजन 350 किग्रा हो तो लगभग कितने बच्चों का वजन एक ध्रुवीय भालू के बराबर होगा', उनकी दृष्टि में अच्छा प्रश्न नहीं था। क्योंकि इसमें उसके हल के लिए आवश्यक सारी जानकारी नहीं है। जो समस्याएँ बच्चे स्कूल के बाहर सुलझा रहे हैं उनमें अक्सर पूरी जानकारी नहीं होती है। उनका कोई एक सटीक उत्तर नहीं होता है और बच्चे उन्हें हल करने के लिए अनौपचारिक तरीके इस्तेमाल करते हैं। इसलिए अध्यापकों को ऐसा नहीं लगता है कि बच्चे सचमुच में गणित कर रहे हैं। आर्थिक रूप से उत्पादक गतिविधियों के सन्दर्भ में, बच्चों के सोच–विचार करने और हिसाब लगाने तथा स्कूल के गणित के बीच कोई अदृश्य दीवार जैसी प्रतीत होती है। यह कहानी कोई अनोखी नहीं है। अनेक शहरी गरीब परिवारों में बच्चे आर्थिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। अलग–अलग सामाजिक और भौगोलिक सन्दर्भों में यदि हम ध्यान से देखें तो पाएँगे कि उनमें भी बच्चों को स्कूल के बाहर गणित का उपयोग करने के अवसर मिलते हैं। ऐसे 'रोजमर्रा' के गणित के लिए लगभग किसी भी स्कूली पाठ्यक्रम में कोई जगह नहीं होती। बहुत हुआ तो सवालों के साथ कुछ प्रसंगात्मक जानकारी जोड़ दी जाती है ताकि उनमें बच्चों की दिलचस्पी बढ़ जाए। इसलिए जो गणित बच्चे स्कूल के भीतर सीखते हैं और जो वे बाहर सीखते हैं, दोनों अलग–अलग और असम्बन्धित बने रहते हैं। निश्चित ही, यहाँ और भी बड़ा मुद्दा स्कूल के पाठ्यक्रम और स्कूल के बाहर के जीवन के बीच के सम्बन्ध का है। चूँकि गणित ज्ञान की एक अमूर्त शाखा है, इसलिए हो सकता है कि कोई सोचे कि संस्कृति और दैनिक जीवन से इसके सम्बन्ध के बारे में कहने के लिए कुछ खास नहीं

है। तथापि अनेक शोधकर्ताओं ने 'रोजमर्रा' के गणित और स्कूल के गणित के सम्बन्ध का अध्ययन किया है और परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टियाँ उपलब्ध हुई हैं।

पियाज़े का अनुसरण करते हुए रचनावाद के समर्थक इस तथ्य पर ज़ोर देते हैं कि बच्चे स्कूलों में ऐसे खाली दिमाग लेकर प्रवेश नहीं करते जिनको भरा जाना है – वे कई ऐसे क्षेत्रों में, जो स्कूल के गणित और विज्ञान के अन्तर्गत भी आते हैं, पहले ही काफी जटिल ज्ञान हासिल कर चुके होते हैं। संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिकों ने बच्चों द्वारा हासिल की जाने वाली स्वस्फूर्त अवधारणाओं की एक विस्तृत तस्वीर निर्मित की है। परन्तु सीखने की व्यक्तिगत प्रक्रिया पर ही ध्यान केन्द्रित रखने के लिए रचनावाद की प्रथम लहर की काफी आलोचना की गई। इस आलोचना का स्रोत कई ऐसे दृष्टिकोण थे जो संस्कृति और समाज के प्रभाव के प्रति ज्यादा संवेदनशील थे। गणित शिक्षण से जुड़े समुदाय में कई विचारक और शोधकर्ता अभी भी इन आलोचनाओं के निहितार्थों पर काम कर रहे हैं। यहाँ हम इस बहस से निकलने वाले कुछ विचारों और सम्भावनाओं पर विचार करेंगे।

तेरेज़िन्हा नूनेस और उनके सहयोगियों द्वारा सड़क के लोक गणित के शुरुआती अध्ययनों, जैफ्रे साक्स द्वारा पापुआ न्यू गिनी समुदायों के गणित के मानवविज्ञानी अध्ययनों, भारतीय पृष्ठभूमि में फरीदा खान के अध्ययनों तथा कई और अध्ययनों से प्रकट होता है कि रोजमर्रा की गतिविधियों के सन्दर्भ में गणित कैसे स्वस्फूर्त ढंग से अनायास सामने आ जाता है। इन अध्ययनों ने यह भी दर्शाया कि रोजमर्रा का लोकगणित कैसे स्कूल के गणित से भिन्न होता है। दैनिक जीवन के प्रसंगों में, गणना 'मौखिक' ढंग से की जाती है, और टुकड़ों में किए गए आँशिक हलों को जोड़ने की तरकीबों का इस्तेमाल करती है। बिहार में मुसहरी जनजाति के एक वयस्क व्यक्ति से पूछा गया कि यदि हर तरबूज 35 रुपये का हो तो दस तरबूजों का दाम कितना होगा। तो वह 'दायीं तरफ एक शून्य जोड़कर' सीधे 350 रुपये पर नहीं पहुँच गया। इसके बजाय उसने पहले तीन तरबूजों के दाम की गणना की जो 105 रु. हुई। नौ तरबूज 315 रुपये के हुए और 10 तरबूज 350 रुपये के हुए। नूनेस के अध्ययन में ठीक इसी सवाल को हल करने के लिए ठीक यही विधि ब्राजील में फेरी लगाकर सामान बेचने वाले बच्चे द्वारा भी इस्तेमाल की गई। 'दायीं तरफ शून्य जोड़ने' की तरकीब 'लिखित' गणित का हिस्सा है, और यह रोजमर्रा के गणित में आम चलन में नहीं दिखाई देती। अनुपात की समस्याओं को हल करने के लिए भी रोजमर्रा के गणित में टुकड़ों में किए गए हलों को जोड़ने की नीति अपनाई जाती है, बजाय 'इकाई की गणना विधि' या 'तीन का नियम' इस्तेमाल करने के, जैसा कि स्कूल में सिखाया जाता है। उदाहरण के लिए, इस सवाल को लें, कि 'यदि 18 किलो पकड़ी गई श्रिंप में से खोल उतारने के बाद तीन किलो खालिस श्रिंप मछली मिलती है, तो दो किलो खालिस श्रिंप के लिए कितनी ऐसी मछली पकड़ना होगी? 'नूनेस के अध्ययन में एक मछुआरे ने इस तरह इसका हिसाब लगायाः हमें 9 किलो पकड़ी मछली से $1^{1}/_{2}$ किलो श्रिंप मछली मिलती है इसलिए $^{1}/_{2}$ श्रिंप 3 किलो पकड़ी मछली से मिलती है। अब 9 और 3, 12 होते हैं इसलिए 12 किलो पकड़ी मछली से 2 किलो खालिस श्रिंप मिलेगी।

चूँकि ये विधियाँ मौखिक थीं, अतः उत्तर देने वाले कभी–कभी गणना का कोई चरण पूरा करना भूल भी जाते थे, परन्तु इससे होने वाली त्रुटियाँ आमतौर पर छोटी होती थीं और उत्तर मोटे तौर पर ठीक होते थे। उनका गणना का प्रतिरूप लगभग हमेशा सही होता था। इसके विपरीत, स्कूल के विद्यार्थी किसी समस्या के हल के लिए अक्सर गलत क्रिया का इस्तेमाल करते हैं और बेतुके उत्तर निकालते हैं। रोजमर्रा के गणित में संस्कृति और संज्ञान मिलकर काम करते हुए प्रतीत होते हैं जिससे उपयुक्त प्रतिरूप गढ़ने का मजबूत आधारबोध पैदा होता है। जब बच्चों को उनकी समझ में आने लायक कोई सवाल दिया जाता है और उसे हल करने के लिए उन्हें अपना तरीका ढूँढने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है तो हम देखते हैं कि उनकी हल करने की सहज विधियाँ अक्सर रोजमर्रा के गणित जैसी होती हैं। अध्ययनों से सामने आए इन तथ्यों से गणित के पढ़ाने और सीखने के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ निकलते हैं। उदाहरण के लिए, हम सीखने के ऐसे मार्गों की नई कल्पना कर सकते हैं जिसमें रोजमर्रा की गणित की समस्याओं, अवधारणाओं और विधियों को आधार की तरह प्रयोग कर गणित की अधिक शक्तिशाली अवधारणाओं की ओर छलांग भरी जा सके। जानकारी से भरपूर, बच्चों के परिचित प्रसंग किसी सवाल को हल करने के लिए, उत्तर के तर्कसंगत होने की जाँच करने के लिए और प्रश्नों को भिन्न दृष्टिकोणों से देखने के लिए एक मूल्यवान ढाँचा प्रदान करते हैं।

परन्तु यदि हम सांस्कृतिक ज्ञान को औपचारिक गणित, जो वैसे ही 'निगलने में कठिन' होता है, को बच्चों तक पहुँचाने के लिए केवल एक वाहन की तरह देखते हैं तो शायद हम काफी संकीर्ण दृष्टि अपना रहे हैं। संस्कृति की खान में जो कुछ उपलब्ध है, हम एक स्रोत की तरह उसका उत्खनन किसी खास पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए नहीं कर सकते। सांस्कृतिक ज्ञान को

औपचारिक ज्ञान के साथ रखने से शिक्षाकर्मियों की तरह हम दोनों के सम्बन्ध पर अधिक गहराई से चिन्तन कर सकेंगे। हमें न केवल संस्कृति के गणितीय सोच के स्रोतों से लेने की जरूरत है बल्कि संस्कृति को वे चीजें वापस देने की भी जरूरत है जिन्हें वह बहुत मूल्यवान मानती है। दीर्घकालिक दृष्टि से यदि ज्ञान के किसी स्वरूप को बने रहना है और समृद्ध बनना है तो संस्कृति में उसकी गहरी जड़ें होना चाहिए। विभिन्न विषयों के औपचारिक ज्ञान तथा संस्कृति के हिस्से की तरह फैले हुए ज्ञान के संगमबिन्दुओं को हम ठीक से नहीं समझते। क्या संस्कृति में व्याप्त ज्ञान की विश्वविद्यालयों के शैक्षणिक ज्ञान से कतई तुलना नहीं की जा सकती, जैसा कि शिक्षा जगत के कुछ विचारकों का तर्क है (डाउलिंग, 1993)? क्या लोकज्ञान और औपचारिक ज्ञान, या पारम्परिक और आधुनिक ज्ञान का जाना–माना विभाजन ही दोनों तरह के ज्ञान के बीच के सम्बन्ध का सही निरूपण हैं? ज्ञान के कुछ क्षेत्रों में औपचारिक संस्थाओं के माध्यम से काफी लम्बे समय से सांस्कृतिक प्रसार और संचार को सशक्त तरीके से होता हुआ देखा गया है। इसका एक अच्छा उदाहरण भारतीय शास्त्रीय संगीत है। एक अन्य उदारहण पारम्परिक चिकित्सा ज्ञान है, जिसको अब आधुनिक शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से पुनर्स्थापित किया गया है। औपचारिक तंत्रों की तरह संगीत और चिकित्सा, दोनों ही विविध सांस्कृतिक स्वरूपों – लोकप्रिय संगीत या अनेक स्थानीय और विशिष्ट परम्पराओं – से अपना जुड़ाव बनाए रखते हैं। परन्तु इसकी तुलना में स्कूल में हम जो अधिकांश ज्ञान प्रदान करने का प्रयास करते हैं, संस्कृति में न तो उसकी ऐसी उपस्थिति होती है और न ही उसकी अभिव्यक्ति के विविध रूप होते हैं।

हमारी संस्कृति में हो सकता है गणित की ऐसी जड़ें हों जिनका हमें पता लगना अभी भी बाकी है। मुसहरी समुदाय के कुछ लोगों में गणितीय उलझनों या पहेलियों तथा उनके हलों का प्रभावशाली ज्ञान होता है। ये पहेलियाँ 'कुट्टक' कहलाती हैं, जो गणित की एक तकनीक का नाम है, जिसका सबसे पुराना विवरण पाँचवीं सदी ईसवीं के आर्यभटियम में मिलता है। 'कुट्टक' एक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली तकनीक है जिससे आगे चलकर भारतीय गणित में महत्वपूर्ण विकास हुए। ब्रम्हगुप्त ने छठवीं ईसवीं सदी में बीजगणितीय तकनीकों की चर्चा 'कुट्टक गणित' कहकर की है। हो सकता है कि मुसहरी पहेलियों, जिनमें समीकरणों को हल करना होता है, ने गणित की इस और भी ज्यादा गहरी परम्परा से सम्बन्ध को बचाकर रखा हो। यह अचरज की बात है कि ऐसा ज्ञान एक ऐसे समुदाय में पाया जाता है जो सामाजिक ऊँच–नीच की व्यवस्था में बहुत नीचे आता है। विभिन्न सामाजिक स्तरों वाले समुदायों के बीच गणितीय ज्ञान के सांस्कृतिक आदान–प्रदान के बारे में हमें बेहतर समझ की जरूरत है। गणितीय ज्ञान के पुनर्उत्पादन और प्रसार में संस्कृति न केवल कामकाज के द्वारा बल्कि खेल के द्वारा भी सहायक होती है। पारम्पारिक कला विधाओं, जैसे संगीत, के डिजिटल तकनीकों के माध्यम से पुनर्जीवित होने और नए आकार लेने से कला और गणित को जोड़ने वाली ऐसी सम्भावनाओं का संकेत भी मिलता है जिन्हें अभी भी तलाशा जाना है।

'रोजमर्रा' के गणित और औपचारिक गणित के सम्बन्ध को एक भिन्न चश्मे से देखने पर पता चलता है कि राजनैतिक पहलू भी इसमें भूमिका निभाते हैं। जैसा कि अनेक लेखकों ने तर्क दिया है, आधुनिक प्रौद्योगिक समाजों की गणितीय विज्ञान पर बढ़ती हुई निर्भरता के चलते, गणित रोजमर्रा की जिन्दगी से और भी ज्यादा दूर हटकर रहस्यमय आवरणों में छिप गया है। तकनीकी उपकरण जिस जटिल गणित पर आधारित होते हैं न केवल वह आम आदमी की पहुँच से दूर है, बल्कि हो सकता है कि रोजमर्रा का वाणिज्य भी गणितीय सोच–विचार से खाली हो जाए। प्रौद्योगिकी ने दैनिक जीवन के वित्तीय लेन–देन के सन्दर्भ में, जिससे करीब–करीब सभी का सम्बन्ध होता है, गणित को अनावश्यक बना दिया है। कैलकुलेटर, ईएमआई की तालिकाएँ और अन्य सहायक उपकरण जादुई काले बक्सों जैसे काम करते हैं जो तर्क और गणना की जगह ले लेते हैं। इससे कौशल की क्षति होती है और बुनियादी गणित से ध्यान और रुचि हट जाती है। हमारे द्वारा किए गए एक छोटे अध्ययन में हमने पाया कि क्रैडिट कार्ड व्यवस्था कैसे काम करती है और ब्याज की प्रभावी दर क्या है, ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दों की जानकारी का शिक्षित उपयोगकर्ताओं में गहरा अभाव था। इस प्रकार समाज के बढ़ते हुए गणितीकरण के साथ ही दूसरी ओर उसके नागरिकों का अगणितीकरण, अर्थात् उनके गणितबोध का क्षय होना, भी हो रहा है। चूँकि गणित स्कूली पाठ्यक्रम के एक अनिवार्य अंग की तरह स्थापित हो चुका है, इसलिए वह एक भिन्न सामाजिक भूमिका निभाने लगता है – वह बहुत बड़ी संख्या में लोगों की छँटनी करके उन्हें गणित और विज्ञान, जो आधुनिक समाज का स्वरूप निर्धारित करते हैं, तक किसी भी प्रकार की पहुँच हासिल करने से वंचित कर देता है।

अनौपचारिक आर्थिक क्षेत्र के अंग की तरह छोटे पैमाने की उत्पादक गतिविधियों के आविर्भाव ने गरीब परिवारों को जीविका के साधन के साथ–साथ संगठित अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के कठोर प्रहार का प्रतिरोध करने का उपाय भी मुहैया करवाया है। अगणितीकरण के बारे में उपरोक्त चर्चा को देखते

हुए हम यहाँ एक समानान्तर प्रवृत्ति को रेखांकित करने का अवसर नहीं छोड़ सकते। अगणितीकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के खिलाफ सड़क के या कामकाज के गणित का आविर्भाव एक ऐसी प्रतिकूल प्रवृत्ति है जो सुविधाविहीन लोगों के गणित के पूरी तरह कट जाने का प्रतिरोध करती है। हालाँकि इसका आविर्भाव अपने आप में महत्वपूर्ण गणित तक पहुँचाने की सामर्थ्य नहीं रखता। परन्तु शिक्षा संस्थाएँ इस सम्भावना का विस्तार कर सकती हैं, हो सकता है कि रोजमर्रा के गणित को पाठ्यक्रम में लाने से समाज के अधिक से अधिक वर्गों तक गणित को ले जाने का मार्ग भी प्रशस्त हो सके।

लेख में आए सन्दर्भ

1. Carraher (Nunes), T.N., Carraher, D.W., and A. D. Schliemann, (1985) Mathematics in the Streets and in Schools. British Journal of Developmental Psychology, 3, pp. 21–29.
2. Khan Farida Abdulla (2004 Living, Learning and Doing Mathematics: A Study of working class children in Delhi, Contemporary Education 3. Dialogue,2,pp.199-277.
3. Saxe.G.B. & Esmonde, I.(2005). Dowling, P. (1995) 'Discipline and Mathematise: the myth of relevance in education', Perspectives in Education, 16, 2. Available at http://homepage.mac.com/paulcdowling/ioe/publications/dowling1995/index.html
4. Saxe, G.B., & Esmonde, I. (2005). Studying cognition in flux: A historical treatment of fu in the shifting structure of Oksapmin Mathematics. Mind, Culture, & Activity. Available at http://lmr.berkeley.edu/docs/saxe_esmonde_mca1234_2.pdf. Accessed 27-01-2010.

के सुब्रमण्यम *होमी भाभा सेन्टर फॉर साइंस ऐजुकेशन, मुम्बई में कार्यरत हैं। वर्तमान में उनके कार्य के प्रमुख क्षेत्र हैं: प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर गणित पढ़ाने के तरीकों पर शोध करना तथा गणित के शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के प्रतिरूप विकसित करना। उनकी अन्य रुचियाँ हैं संज्ञानात्मक विज्ञान तथा दर्शन, विशेष रूप से जिसका सम्बन्ध शिक्षा और गणित के सीखने से हो। उनसे* ravi.k.subra@gmail.com *पर सम्पर्क किया जा सकता है।*